E-ISSN: 2664-603X
P-ISSN: 2664-6021
IJPSG 2024; 6(1): 49-51
www.journalofpoliticalscience.com
Received: 02-11-2023
Accepted: 07-12-2023

डॉ. अरविन्द कुमार
एसो. प्रोफेसर–राजनीति विज्ञान, वीरभूमि राजकीय स्नात्कोत्तर महाविद्यालय, महोबा, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
डॉ. अरविन्द कुमार
एसो. प्रोफेसर–राजनीति विज्ञान, वीरभूमि राजकीय स्नात्कोत्तर महाविद्यालय, महोबा, उत्तर प्रदेश, भारत

वर्तमान समय में भारतीय लोकतंत्र का भविष्य और चुनौतिया

अरविन्द कुमार

DOI: https://www.doi.org/10.33545/26646021.2024.v6.i1a.614

सारांश
राष्ट्र एवं राष्ट्रीय स्वाभिमान व गरिमा हेतु स्वदेशी की अवधारणा को व्यावहारिक स्वरूप देने की प्रक्रिया भारतीय राजनीति में गांधी का प्रादुर्भाव एक मार्गदर्शक और प्रेरणादाई व्यक्तित्व के रूप में होती है जिसने भारत के साथ ही संपूर्ण विश्व मानवता को आश्चर्य किंतु सुखद एवं समृद्ध भविष्य के प्रति आशान्वित आसानी भी करती है। ऐसी मान्यता है कि यही वह समय था जब संपूर्ण मानवता वैश्विक विनाश के भय से मुक्ति का मार्ग गांधी के सत्य अहिंसा सत्याग्रह तथा साहस एवं साधनों की पवित्रता का मानदंड युद्ध की विभीषिका को दूर करके करके शांति एवं सह अस्तित्व तथा गरिमा पूर्ण जीवन का संदेश देती है।

कुटशब्दः राजनीति, लोकतंत्र, साम्प्रदायिकता, क्षेत्रवाद, नस्लवाद, अहिंसा व सत्याग्रह

प्रस्तावना

भारतीय लोकतंत्रः रातनीति एवं नैतिकता पर गांधीवादी परिप्रेक्ष्य

राजनीति में जिस नैतिकता एवं धर्म को अनावश्यक बताकर मनुष्य को व्यवहारिक समस्या के निदान जिसकी आवश्यकता कई सदियों से महसूस की जा रही थी धर्मनिरपेक्ष राज्य में देखा गया था उसे गांधी ने अराजक व मृत्यु जाल की संख्या दे दिया। इस तरह गांधी राजनीति में स्वयं के आगमन का कारण राजनीति में धर्म (सत्य एवं अहिंसा का आचरण के संदर्भ में) एवं नैतिकता की पुनर्स्थापना की आदर्श को बताया। दूसरी तरफ आम जनमानस जिसको जीवन की मूलभूत आवश्यकता से वंचित रखकर मानव गरिमा से भी वंचित रखा गया था। वह वंचित समाज भी गांधी को मुक्तिदाता के रूप में देखता था।

अतः विश्व समाज के साथ ही मनुष्यता की अवधारणा में खुद को समाहित करने की उत्कष्ठा में गांधी ही उद्धारक हो सकते थे। वंचित समाज की यह उत्साह तब निराशा में बदल गया जब गांधी द्वारा अनेक अवसरों दिए गए भाषणों एवं वक्तव्यो में यह जाहिर किया कि शिक्षा तथा अवसर की समानता का अधिकार वंचित अथवा अछूत समाज को नहीं मिलना चाहिए साथ ही गांधी ने यह मान्यता रखी कि भारतीय धर्म शास्त्रों में स्थापित वर्ण व्यवस्था को भारतीय समाज में श्रम विभाजन की सबसे उत्कृष्ट व वैज्ञानिक व्यवस्था बता दिया। तथा उन्हें यह संदेश दिया कि वर्ण द्वारा निर्धारित कर्तव्य ही धर्म है अर्थात उन्हें अपने धर्म का पालन ईश्वर का आदेश समझकर करें। इसी तरह जिस नैतिकता को गांधी ने राजनीति का सबसे अनिवार्य घटक माना था गांधी अपने व्यक्तित्व जीवन में उसी नैतिकता के खिलाफ दिखते हैं। अतः गांधी ने सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक नैतिकता को विद्रूप कर एक नए तरह का संकट खड़ा कर दिया जिससे भारतीय समाज में एक नए तरह का अनवरत चलने वाले संघर्ष को जन्म दे दिया है। इस परिपेक्ष्य में अब यह सवाल उठता है कि स्वाधीन भारत में जन्मे इस नये तरह की संरचनात्मक हिंसा जो धीरे–धीरे अनेक रूपो में प्रकट हुई है इसका समाधान किन प्रत्ययों के द्वारा हो सकता है ? गांधी अपने लोकतंत्र में समाज के अल्पसंख्यक समुदाय (अभिजन) के जीवन को समृद्ध व सुसंस्कृत बनाकर ही संतुष्ट हो जाते हैं फलतः गांधीवादी लोकतंत्र शेष बहुसंख्यक जनता के जीवन को अत्यधिक जटिल, दुरुह व कष्टकारक बना देता है। साधारण मनुष्य को थोड़ी सी मजदूरी के लिए लगातार परिश्रम करते रहने व पशुवत जीवन जीने के लिए धार्मिक राज्य संरचना(गांधी जिसे रामराज्य कहते थे) के अंतर्गत बाध्य कर देता है।

इस तरह गांधी वर्ग–बोध (वर्ग, वर्ण तथा आय के आधार पर आर्थिक और सामाजिक वर्गीकरण के ढांचे) से ही संतुष्ट नहीं होते वरन् वर्ग–भेद की संरचना को अभेद्य भी बना देते हैं, जो मनोवैज्ञानिक रुप से साधनसम्पन्न/सर्वसम्पन्न वर्ग तथा साधनविहीन वर्ग दोनों के लिए ही हानिहारक होता है। इतिहास में सर्वसम्पन्न तथा निर्धन वर्गों के आपस में मिलने का ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता।

यही वह मूल कारण भी है जो निर्धन वर्ग को उसके इस अलगाव के कारण उसे तमाम सामाजिक एवं नैतिक बुराईयों से आप्लावित (जो बाजार अर्थव्यवस्था के पूंजीवादी दौर में अपने चरम पर पहुंच गया है) कर देती है। गांधीवाद इसे सैद्धांतिक तथा संरचनात्मक स्थायित्व प्रदान करने का दोषी है जिसे कोई लोकतांत्रिक समाज कभी स्वीकार नहीं कर सकता।

गांधी के अहिंसा का दर्शन हमारी आने वाली पीढ़ियों के लिए अराजक अंतहीन तथा स्थायी हिंसा (हिंसा के समस्त रुपों में) के परिवेश का सृजन करता है और उसे धार्मिक (विशेषकर सामुदायिक) स्वरुप देकर जटिल व अराजक बना देता है।

लोकतंत्र

लोकतंत्र केवल राजनीतिक–सामाजिक परिस्थिति ही नहीं बल्कि शासन और जीवन की लोकजयी धारणा भी है। लोकतंत्रात्मक व्यवस्था, व्यष्टिवाद से समष्टिवाद की ओर अग्रसर होती है, इसलिए लोकतंत्र में व्यक्ति का महत्त्व सर्वोपरि है। एक लोकतांत्रिक राष्ट्र को आरोही–क्रम में इस प्रकार देखा जा सकता है– व्यक्ति, परिवार, समाज, प्रदेश और अंततः राष्ट्र। वह एकमात्र शासन चलाने की व्यवस्था ही नहीं है, वह तो एक विकासशील दर्शन है और जीने की एक गतिशील पद्धति भी। लोकतंत्र जनता के बराबरी के स्तर पर शासन की समस्त कार्य व्यवस्था में पूर्ण भागीदारी तथा समाज के सहभागी जीवन जीने की शर्तों समान निर्णयकारी भूमिका के सुनिश्चयन अर्थात सही मायने में जनता द्वारा जनता का शासन स्थापित करना है इसतरह जिस व्यवस्था की चर्चा हो रही है, उसमें जीने वाले व्यक्ति पूर्ण भागीदारी के साथ, स्वयं पर शासन चलाते हैं। चूँकि शासन को सामूहिक रूप देना होता है। अतः जनता विकल्प की स्वतंत्रता की अपरिहार्यता की स्थिति में अपनी पसन्द के प्रतिनिधि को चुनती है और एक निश्चित अवधि के लिए उसे जवाबदेही से युक्त उत्तरदायित्व प्रदान करती है।

लोकमत और लोकतंत्रः व्यवहारिक एवं व्यवस्थाजनित चुनौतियां

लोकतन्त्र में सरकार का निर्माण और पतन, लोकमत पर ही निर्भर करता है। सन् 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के समय से भारत में लोकमत का बनना शुरू हो गया था किन्तु स्वतन्त्रता की प्राप्ति और स्वतन्त्रता, समानता एवं भ्रातृत्व पर आधारित नवीन संविधान को अपनाये जाने के बाद लोकमत के निर्माण और उसकी अभिव्यक्ति के साधन शक्तिशाली हुए हैं।

प्रारम्भ में स्वस्थ लोकमत के निर्माण में निरक्षरता, जनती की भाग्यवादी प्रवृत्ति, जातिवादी और सम्प्रदायवादी सोच तथा भीषण निर्धनता और तीव्र आर्थिक असमानता बाधाएँ बनकर खड़ी रहीं फिर भी परतन्त्रता के दुष्प्रभावों को हमने एक बड़ी सीमा तक समाप्त किया है। निरक्षरता और निर्धनता पर विजय मिलते ही भारत की जनता पश्चिमी देशों के समान जागरूक हो जायेगी।

सही मायनें में लोकतान्त्रिक व्यवस्था से ही हमनें स्वतन्त्रता के महत्त्व को जाना है। जब देश स्वतन्त्र हुआ था तो असामाजिक तत्व निर्भय हो गये थे और प्रारम्भिक अराजकता को देखकर अशिक्षित जनता कहती थी कि इससे अच्छा तो अंग्रेजों का शासन था, किन्तु आज तुलना अंग्रेजों के शासन से न होकर राजनीतिक दलों अथवा गठबन्धन की सरकारों से होती है हलांकि 2014 के बाद से भारत में बहुमत की सरकार सत्ता में है और बदलें हुए राजनीतिक परिदृश्य में नागरिकों की जरुरतों और चुनौतियों में आमूल परिवर्तन आया है। वर्तमान में आमजन मानस में राजनीतिक जागरुकता के कारण सभी को राजनीतिक स्वतन्त्रता का अर्थ काफी हद तक समझ में आ गया है। जिनके अन्तर्गत व्यक्ति को मतदान देने, निर्वाचित होने, उचित योग्यता होने पर सार्वजनिक पद प्राप्त करने और सरकार के कार्यों की आलोचना करने जैसे अधिकार प्राप्त होते हैं।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के शुरूआती वर्षों के अन्दर ही जनता ने राजनीतिक स्वतन्त्रता का अर्थ समझ लिया। सन् 2004 में तो सारी भविष्यवाणियों एवं चुनाव सर्वेक्षणों को नकारते हुए जनता ने अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व वाले राजग को सत्ता से बाहर कर दिया और कांग्रेस के नेतृत्व वाले यू.पी.ए. को सरकार बनाने का अवसर दिया। फूलनदेवी जैसी निरक्षर व जातीय/नस्लीय शोषण की शिकार महिला एवं गरीबी में पले–बढ़े दलित और पिछड़े वर्ग के लोगों को सांसदों और विधानमण्डलों में सदस्यों के रूप में चुने जाने से यह स्पष्ट है कि जनता समानता एवं शासन में समान भागीदारी तथा राजनीतिक स्वतन्त्रता के अर्थ को काफी हद तक समझ चुकी है। हालांकि आजादी के 75 वर्षों के पश्चात भी आज तक एक स्वस्थ राजनीतिक संस्कृति का विकसित नहीं हो पाना अत्यंत शोचनीय विषय है।

लोकतान्त्रिक व्यवस्था ने ही हाशिये के लोगों में शोषण और सामाजिक असमानता के विरूद्ध लड़ना का साहस पैदा किया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय देश में जमींदारी और सामन्ती प्रथा विद्यमान थी तथा राजनीतिक सत्ता के स्तर पर विदेशी शासन होने के बावजूद सामाजिक सत्ता जातिधारित व धर्माधारित बनी रही तथा सम्पूर्ण गतिविधियों का संचालन चतुर्वणीय बना रहा। भू–सुधार, बैंकों का राष्ट्रीयकरण, प्रिवि पर्स की समाप्ति तथा जमींदारी उन्मूलन के बाद भी बेगार और ग्रामीण मजदूरों को शोषण जारी था।

निष्कर्ष एवं सुझाव

राजनीतिक दलों ने जनता में जागरूकता पैदा की और कमजोर वर्ग को भी अपने हक के लिए लड़ना सिखाया। इसतरह अल्पविकसित समाज पर आरोपित सामाजिक मूल्य के कारण राजा साहब, बाबू साहब, साहूकार जी, पुरोहित महाराज आदि को जो सम्मान मिल रहा था, उसमें आंशिक कमी आयी तथा अब उनका स्थान जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों ने ले लिया। इसके अतिरिक्त अस्पृश्यता को समाप्त किये जाने और इसे अपराध घोषित करने से दलितों को भी आत्मसम्मान का बोध हुआ। हालांकि इस बदलाव ने नये तरह के शोषक वर्ग को जन्म दे दिया। अतः आज राजनीतिक पहुँच वाले व्यक्ति कोई भी अपराध करके साफ बच निकल रहे हैं तथा प्रशासन को डरा–धमकाकर तथा जनता में भय उत्पन्न करके चुनाव जीते जा रहे हैं। साम्प्रदायिकता, जातिवाद, भाषावाद, प्रादेशिकता, क्षेत्रीयता जैसी नवीन चुनौतियां हमारे समक्ष उपस्थित हो गईं है। जिसका इस्तेमाल राजनीतिक दल अपने सत्ता को स्थायी बनाने का अचूक अस्त्र के रुप में करती है। आज हमने भारतीय वोट को सवर्ण वोट, दलित वोट, मुस्लिम वोट, पिछड़ा वोट इत्यादि अन्य–अनेक भागों में बाँट दिया है। अतः लोकतंत्र जिसका मुख्य दायित्व जनता का प्रतिनिधित्व, जनता के हितों का संरक्षण, तथा जनता के प्रति उत्तरदायित्व व जवाबदेह होना है से भटक गया है। व्यवस्थापिका जनता का प्रतिनिधित्व करती है, किंतु जनता के जागरूक न रहने तथा जाति, नस्ल, सम्प्रदाय तथा लैंगिक स्तर बॅटे होनें के कारण जाने–अनजाने व उक्त पूर्वाग्रहों से ग्रसित होने के कारण वह ऐसे व्यक्तियों का चुनाव कर देती है, जो ऊपर से जनता के हितों की बात तो करते हों किन्तु वास्तव में वे अपने व्यक्तिगत लाभ के लिये चुनाव लड़ रहें हों या फिर जनता आतंकित होकर किसी बाहुबली या अपराधी का चुनाव करने को विवश हो जाती है। अतः जनता को क्षेत्र, जाति, धर्म, नस्ल व लैंगिक भेदभाव को परे रखकर अपने हितों को समझना भी जरूरी है। जटिल आर्थिक और सामाजिक संरचना में जनता को संकीर्ण जातिगत या क्षेत्रीय हितों के विरूद्ध राष्ट्रीय अथवा सम्पूर्ण समाज के विशाल हितों के बीच अंतर करना होता है। उसका कोई भी गलत निर्णय जटिल व दूरगाामी समस्या का कारण

बनता है। इस प्रकार स्वस्थ लोकमत का निर्माण अत्यावश्यक हो जाता है।

संदर्भ सूची

1. मो. क. गांधी; सत्य के प्रयोग, नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, 2012।
2. मा. कांशीराम; (अनु., मोज़ेज़ माइकेल) चमचा युग, सम्यक प्रकाशन,नईदिल्ली, 2016।
3. गांधी, महात्मा; हिंद स्वराज, सर्व सेवा संघ–प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी, 2006।
4. गांधी, महात्मा; मेरे सपनों का भारत, नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, 2008
5. डॉ. अम्बेडकर बी.आर.: 'सम्पूर्ण वाङ्मय' खंड–1,10 व 16, सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मन्त्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2011।
6. डॉ. अम्बेडकर, बी.आर.:'सम्पूर्ण वाङ्मय' खंड–5, सामाजिक न्याय एव अधिकारिता मन्त्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2011।
7. दूबे, अभय कुमारः 'भारत का भूमण्डलीकरण' वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2007।
8. द्रेज़ ज्यां; झोला वाला अर्थशास्त्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020।
9. Munshi, Surendra (edit.); Democracy Under Threat, Oxford University Press, 2017.